सम्यग्ज्ञान दीपिका : शास्त्रीय चिन्तन

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

पण्डितजीने जहाँ जयधवल, महाधवल, महाबन्ध, लब्धिसार, सर्वार्थसिद्धि आदि महान् ग्रन्थोंका सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद किया, वहीं आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कृत "समयसारकलश" तथा देवसेनसूरि विरचित "आलापद्धति" का भी सम्पादन एवं संशोधन किया। संशोधकके रूपमें पण्डितजीका स्थान विशिष्ट है। इसके अतिरिक्त बीसवीं शतीमें होनेवाले क्षुल्लक धर्मदासजी रचित "सम्यग्ज्ञानदीपिका" का आजकी भाषामें सरल अनुवाद भी आपने किया। यह देखकर और जानकर किंचित् आश्चर्य अवश्य हुआ। क्योंकि पण्डितजीकी पैनी दृष्टि हर किसी रचनापर ठहर कर उसे अपने अध्ययन-लेखनका विषय नहीं बनाती। किसी महत्त्वपूर्ण रचना पर ही उनकी लेखनी चलती है।

वास्तवमें ऊपरसे अति सामान्य दिखनेवाली "सम्यग्ज्ञान-दीपिका" अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचना है। इसे एक बार ध्यानसे पूरा पढ़े बिना कोई इस बातको स्वीकार नहीं कर सकता। यदि यह सर्वांशमें सच है कि आचार्य कुन्दकुन्द कृत "समयसार" को सम्यक् रूपसे हृदयंगम किए बिना कोई अपनी दृष्टिको निर्मल नहीं बना सकता, तो यह भी सच है कि "सम्यग्ज्ञानदीपिका" को पूर्णतः स्वीकार किए बिना हमारा ज्ञान निर्मल नहीं हो सकता। पहले कभी विद्वानोंका ध्यान इस रचना की ओर नहीं गया, इसलिए यह उपेक्षित रहा। क्षुल्लक ब्र० धर्मदासने वि० सं० १९४६ में माघ की पूर्णिमाके दिन इसे रचकर प्रकाशित किया था। इसका दूसरा संस्करण अमरावतीसे वि० सं० १९९० में प्रकाशित हुआ था। तदनन्तर श्री दि० जैन मुमुक्षु मण्डल, भावनगर (सौराष्ट्र) से वि० सं० २०२६ में प्रकाशित हुआ। यह रचना मूलमें पुरानी हिन्दीमें कही गई है, जिसका हिन्दी रूपान्तरण पं० फूलचन्द्रजीने किया है। इसके पूर्व गुजरातीमें अनूदित दो आवृत्तियां सोनगढ़से प्रकाशित हो चुकी थीं।

रचनाके सम्बन्धमें जिज्ञासावश सहज ही कई प्रश्न उठते हैं। प्रथम जिनकी रचनाकी इतनी प्रशंसा की जा रही है, वे कौन थे? उन्होंने स्वयं प्रथम भूमिकामें अपने सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—"मेरे शरीरका नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है। ...झालरापाटनमें सिद्धसेन मुनि मेरे दीक्षा-शिक्षा, व्रत-नियम और व्यवहार वेशके दाता गुरु हैं तथा वराड़ देशमें मुकाम कारंजा पट्टाधीश श्रीमत्देवेन्द्रकीर्तिजी भट्टारकके उपदेश द्वारा मुझे स्व-स्वरूप स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाव वस्तु की प्राप्त की प्राप्ति देनेवाले श्रीसद्गुरु देवेन्द्रकीर्तिजी हैं, इसलिए मैं मुक्त हूँ, बन्ध-मोक्षसे सर्वथा प्रकार वसर्जत सम्यग्ज्ञानमयी स्वभाववस्तु हूँ। ...वही स्वभाववस्तु शब्द-वचन द्वारा श्रीमत्देवेन्द्रकीर्ति तत्पट्टे रतनकीर्तिजीको मैं भेंट स्वरूप अर्पण कर चुका हूँ। तथा खानदेश मुकाम पारोलामें सेठ नानाशाह तत्पुत्र पीताम्बरदासजी आदि बहुतसे स्त्री-पुरुषोंको तथा आरा, पटना, छपरा, बाढ़, फलटन, झालरापाटन, बुरहानपुर आदि बहुतसे शहर ग्रामोंमें बहुतसे स्त्री-पुरुषोंको स्वभाव-सम्यग्ज्ञानका उपदेश दे चुका हूँ। पूर्वमें लिखा हुआ सब व्यवहारगर्भित समझना। तथा सर्व जीव-राशि जिस स्वभावसे तन्मयी है, उसी स्वभावकी स्वभावना सर्व ही जीव-राशिको होओ—ऐसे मेरे अन्तःकरण में इच्छा हुई है। उस इच्छाके समाधानके लिए यह पुस्तक बनाई है और इसकी पाँच सौ पुस्तक छपाई हैं।

केवल इतना ही उनका परिचय नहीं है, वास्तविक तो यह है—"उस वस्तुका लाभ वा प्राप्तकी प्राप्ति होने योग्य थी, वह हमको हुई। यथा—

होनी थी सो हो गई, अब होने की नाहिं।
धर्मदास क्षुल्लक कहे, इसी जगतके मांहि॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुल्लकजी प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी आदि भाषाओंके तथा सभी अनुयोगोंके अच्छे ज्ञाता थे। संस्कृत और हिन्दी पद्य-रचना पर उनका समान अधिकार था। रस, अलंकार, छन्दशास्त्र, न्यायशास्त्र आदिके ज्ञाता विद्वान् लेखक थे।

इस ग्रन्थमें मुख्य रूपसे आत्माके शुद्ध स्वभावका वर्णन किया गया है। क्योंकि वही आत्मज्ञान कराने के लिए प्रकट रूपसे दीपकके समान है। आत्मज्ञानके मायने सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञानको भेद-विज्ञान भी कहा जाता है। भेद-विज्ञान होनेपर आत्मा स्वयं स्वरूपसे उद्भासित हो जाता है। स्व-प्रकाशक होनेसे पर-प्रकाशकत्व सार्थक हो जाता है। अपनी प्रस्तावनामें ग्रन्थकारने कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं जिससे सहज ही अनुमान हो जाता है कि यह अपूर्व शास्त्र है। उनके ही शब्दोंमें—"इस ग्रन्थमें केवल स्व-स्वभाव, सम्यग्ज्ञानानुभव सूचक शब्द-वर्णन है। कोई दृष्टान्तमें तर्क करेगा कि—"सूर्यमें प्रकाश कहाँसे आया ?" उसे स्व-सम्यग्ज्ञानानुभव जो इस ग्रन्थका सार है, उसका लाभ नहीं होगा।"

इससे स्पष्ट है कि यह एक आध्यात्मिक शास्त्र है। अध्यात्मकी भाषा लौकिक भाषासे कुछ विलक्षण होती है। जहाँ भाषा सामान्य होती है, वहाँ अर्थ विशिष्ट होता है। कहीं-न-कहीं शब्द या अर्थमें सांकेतिक विशिष्टता झलकती है। जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्ददेवने "अष्टपाहुड" में वर्णन किया है, ठीक वैसा ही यहाँ लिखते हुए कहते हैं—"जिस अवस्थामें स्व-सम्यग्ज्ञान सोता है, उस अवस्थामें तन-मन-धन वचनादिसे तन्मयी यह जगत्-संसार जागता है तथा जिस अवस्थामें यह जगत्-संसार सोता है, उस अवस्थामें स्व-सम्यग्ज्ञान जागता है—यह विरोध तो अनादि, अचल है और वह तो हमसे, तुमसे, इससे या उससे मिटनेका नहीं है, मिटेगा नहीं और मिटा नहीं था।"

क्षुल्लकजीने यह पुस्तक केवल जैनोंके लिए ही नहीं, सभी पढ़ने योग्य मनुष्योंके लिए लिखी थी। यद्यपि पूरी पुस्तक गद्यमें है, किन्तु स्थान-स्थानपर दोहे-चौपाईमें भी भावोंको समेट कर प्रकट किया है। कहीं लोगोंको यह भ्रम न हो कि यह पुस्तक तो केवल जैनोंके लिए है। अतः स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं—"यह पुस्तक जैन, विष्णु आदि सभीको पढ़ने योग्य है, किसी विष्णुको यह पुस्तक पढ़नेसे भ्रान्ति हो कि यह पुस्तक जैनोक्त है—उससे कहता हूँ कि इस पुस्तककी भूमिकाके प्रथम प्रारम्भमें ही जो मन्त्र नमस्कार है, उसे पढ़कर भ्रान्तिसे भिन्न होना। स्वभावसूचक जैन, विष्णु आदि आचार्योंके रचे हुए संस्कृत काव्यबद्ध, गाथाबद्ध ग्रन्थ अनेक हैं, परन्तु यह भी एक छोटी-सी अपूर्व वस्तु है। जिस प्रकार गुड़ खानेसे मिष्टताका अनुभव होता है, उसी प्रकार इस पुस्तकको आदिसे अन्त तक पढ़नेसे पूर्णानुभव होगा। बिना देखे, बिना समझे वस्तुको कुछके बदले कुछ समझता है। वह मूर्ख है। जिसे परमात्माका नाम प्रिय है, उसे यह ग्रन्थ अवश्य प्रिय होगा।"

इस ग्रन्थकी प्रमुख विशेषता है—दृष्टान्तोंका प्रमुखतासे प्रयोग। स्थान-स्थानपर प्रत्येक बातको दृष्टान्त के द्वारा समझाया गया है। लिखनेकी शैली ही दृष्टान्तमूलक है। उदाहरणके लिए, जैसे हरे रंगकी मेंहदीमें लाल रंग है परन्तु वह दिखाई देता नहीं, पत्थरमें अग्नि है परन्तु वह दिखाई देती नहीं, दूधमें घी है परन्तु वह दिखाई देता नहीं तथा फूलमें सुगन्ध है परन्तु वह (आँखोंसे) दिखाई देती नहीं, वैसे ही जगतमें स्व-सम्यग्ज्ञानमयी जगदीश्वर है परन्तु चर्मनेत्र द्वारा वह दिखाई देता नहीं। पर किसीको सद्गुरुके वचनोपदेश द्वारा तथा काललब्धिके पाक द्वारा स्वभाव-सम्यग्ज्ञानसे तन्मय (जगदीश्वर) स्वभाव-सम्यग्ज्ञानानुभवमें दिखाई देता है।"

इस प्रकार एक ही बातको समझानेके लिए विविध दृष्टान्तोंका एक साथ दृष्टान्त-मालाके रूपमें प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"पूर्वकर्मवश वह अन्य वृत्तिमें लग जाय, तब वह स्व-सम्यग्ज्ञानानुभवको भूल भी जाता है, परन्तु जब याद करे तब साक्षात् स्वानुभवमें आता है। इसी विषयमें तीन दृष्टान्त हैं—(१) जैसे एक बार चन्द्रको देख लेनेके बाद चन्द्रका अनुभव जाता नहीं, (२) एक बार गुड़को खानेके बाद गुड़का अनुभव जाता नहीं, (३) तथा एक बार भोग भोगनेके बाद भोगका अनुभव जाता नहीं।"

स्व-सम्यग्ज्ञानको समझानेके लिए दर्पणका, पेटी तिजोरीमें रखकर भूले हुए रत्नका दृष्टान्त देकर फिर ये तीन दृष्टान्त दिये गए हैं। प्रत्येक बातको लेखक दृष्टान्तसे प्रारम्भ करता है। जैसे कि—

"जैसे बाजीगर अनेक प्रकारका तमाशा, चेष्टा करता है, परन्तु स्वयं अपने दिलमें जानता है कि मैं जो ये तमाशे, चेष्टाएँ करता हूँ, वैसा मैं मूल स्वभावसे ही नहीं हूँ। "जैसे खड़िया मिट्टी आप स्वयं ही श्वेत है और परको, भीत आदिको श्वेत करती है, परन्तु स्वयं भीत आदिसे तन्मय होती नहीं। वैसे ही सम्यग्ज्ञान है वह सर्व संसार आदिको चेतनवत् करके रखता है, परन्तु स्वयं संसार आदिसे तन्मय होता नहीं।"

विद्वान् लेखकने एक बात ही कई प्रकारके दृष्टान्तोंसे विविध स्थानोंपर समझाया है। पद-पदपर वे अपने सम्यग्ज्ञानके अनुभवको ही सुनाते हैं। लगता है कि कोई अनुभवी निश्छलताके साथ सहज स्नेहवश सी -सरल शब्दोंमें अपनी बात सुना रहा है। उनके ही शब्दोंमें—

'स्व-सम्यग्ज्ञानानुभव सुनो। जैसे कोई पुरुष पानीसे भरे हुए घटमें सूर्यके प्रतिबिम्बको देखकर सन्तुष्ट था, उससे यथार्थ सूर्यके जाननेवाले पुरुषने कहा कि तू ऊपर आकाशमें सूर्य है उसे देख, तब वह पुरुष घटमें सूर्यको देखना छोड़कर ऊपर आकाशमें देखने लगा। तब यथार्थ सूर्यको देखकर उसने अपने अन्तःकरणमें विचार किया कि जैसा सूर्य ऊपर आकाशमें दिखाई देता है, वैसा ही घटमें दिखाई देता है। जैसा यहाँ, वैसा वहाँ तथा जैसा वहाँ, वैसा यहाँ, अथवा न यहाँ, न वहाँ अर्थात् जैसा है, वैसा जहाँका तहाँ, वैसा ही स्व-सम्यग्ज्ञानमयी सूर्य है, वह तो जैसा है वैसा, जहाँका तहाँ स्वानुभव गम्य है। वह जो है, उसे नय, न्याय और शब्दसे तन्मय हो रहे पण्डित उस स्वानुभवगम्य सम्यग्ज्ञानमयी परब्रह्म परमात्माकी अनेक प्रकारसे कल्पना करते हैं, वह वृथा है।'

कहीं-कहीं बहुत ही कम शब्दोंमें हृदयको छूती हुई भाषामें भाव प्रकट किए गये हैं। छोटे-छोटे वाक्योंसे रस टपकता हुआ जान पड़ता है। जैसे कि—

'जैसा बीज वैसा उसका फल।

जैसे जो नेत्रसे देखता है परन्तु नेत्रको नहीं देखता है, वह स्यात् अन्धेके समान है : वैसे ही जो ज्ञानसे जानता है परन्तु ज्ञानको नहीं जानता है, वह स्यात् अज्ञानके समान है।' इसी प्रकार—

'जैसे सूर्यके प्रकाशमें अन्धकार कहाँ है और सूर्यको निकाल लिया जाये तो प्रतिबिम्ब कहाँ है? आत्मज्ञानी जीवके लिये जगत्-संसार मृगजलके समान है, परन्तु सूर्य न हो तो मृगजल कहाँ है? वैसे ही गुरुके उपदेश द्वारा आपमें आपमयी आपको आपमें ही खेंच लेनेके बाद आकार कहाँ है? वैसे ही यह जगत्-संसार है सो भ्रम है, भ्रम उड़ गया तो जगत्-संसार कहाँ है?'

कहीं-कहीं दृष्टान्त भी तर्कपूर्ण तथा सरल शब्दोंमें सहज भावसे अभिव्यक्त हुए हैं। जैसे कि—'जैसे आकाशको धूलि-मेघादिक नहीं लगते, वैसे ही स्व-सम्यग्ज्ञानको पाप-पुण्य तथा पाप-पुण्यका फल नहीं लगता।' इसी प्रकार—

'जैसे घटके भीतर, बाहर और मध्यमें आकाश है, वह घटको कैसे त्यागे और ग्रहण भी कैसे करे? वैसे ही इस जगत्-संसारके भीतर, बाहर और मध्यमें स्व-सम्यग्ज्ञान है, वह क्या त्यागे और क्या ग्रहण करे?' तथा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैसे समुद्रके ऊपर कल्लोल उपजती है, विनशती है, वैसे ही स्व-सम्यग्ज्ञानमयी समुद्रमें वह स्वप्न-समयका जगत् उपजता है और जाग्रत समयका जगत् विनशता है, जाग्रत समयका जगत् उपजता है और स्वप्न-समयका जगत् विनशता है।'

इस प्रकारके दृष्टान्तोंसे सम्पूर्ण ग्रन्थ व्याप्त है। एकके बाद एक दृष्टान्तोंका ऐसा संग्रह किया है और कहनेकी शैली भी ऐसी है कि पाठक पढ़ते ही विस्मित हो जाता है। ग्रन्थके अन्तमें अकिंचन भावना है और सबसे अन्तमें है—भेद-विज्ञान। भेद-विज्ञानमें पुनः आत्माकी चर्चा की गई है, आत्मज्ञान या सम्यग्ज्ञानको ही आदिसे अन्त तक एक ही शैलीमें निरूपित किया गया है।

ग्रन्थके अनुवादकी यह विशेषता है कि हमें यह पता नहीं चलता है कि यह भाषा पण्डित फूलचन्द्रजी-की है या क्षु० ब्र० धर्मदासजी की है। पण्डितजीने यथास्थान अधिक-से-अधिक ग्रन्थ-लेखकके शब्दोंको ही दुहराया है। शैली भी रूपान्तरणके पश्चात् लेखककी ज्यों-की-त्यों बनी रही है। यह अनुवादकी बहुत बड़ी विशेषता है। भाषा सरल होनेपर भी संस्कृतनिष्ठ है। लेकिन अनुवाद से पण्डितजीके संस्कृतनिष्ठ होनेका आभास नहीं मिलता, वरन् मूल लेखकके संस्कृतनिष्ठ होनेका प्रतिभास होता है। लेखकने यद्यपि ग्रन्थ गद्यमें लिखा है, किन्तु उसकी कवित्व शक्तिका परिचय भी मिल जाता है। संस्कृतमें भी काव्य रचनाका उनका अच्छा ज्ञान था। इसका प्रमाण उनका लिखा हुआ निम्नलिखित श्लोक है—

श्रीसिद्धसेनमुनि-पाद-पयोज-भक्त्या,
देवेन्द्रकीर्ति गुरुवाक्य-सुधारसेन ।
जाता मतिर्विबुधमण्डनेच्छोः
श्रीधर्मदासमहतो महतो विशुद्धा ॥

विद्वान् लेखकने सभी शास्त्रीय विषयोंको महान् आध्यात्मिक ग्रन्थोंका आधार लेकर ही लिखा है। उदाहरणके लिए, "भेदज्ञान-विवरण" का प्रकरण "समयसार" के संवर अधिकारकी प्रथम दो गाथाओंकी आत्मख्याति टीकापर आधारित है। लेखकने कई स्थानोंपर "समयसार-कलश" के श्लोक उद्धृत किए हैं। एक स्थानपर शास्त्रका प्रमाण शब्दोंमें न देकर भावरूपमें ऐसा लिखते हैं—'शास्त्रमें लिखते हैं कि मुनि बाईस परीषह सहन करता है, तेरह प्रकारका चारित्र पालता है, दशलक्षण धर्म पालता है, बारह भावनाओंका चिन्त-वन करता है और बारह प्रकारके तप तपता है इत्यादि मुनि करता है। अब यहाँ ऐसा विचार आता है कि मुनि तो एक और परीषह बाईस, चारित्र तेरह प्रकारका, दशलक्षण धर्म व एक धर्मके दशलक्षण, बारह तप और बारह भावना इत्यादिक बहुत ? मुनि कुछ और है तथा बाईस परीषह कुछ और हैं, बाईस परीषह-का तथा मुनिका अग्नि-उष्णताके समान व सूर्य-प्रकाशके समान मेल नहीं है। आकाशमें सूर्य है। उसका प्रतिबिम्ब घी-तेलसे तप्त कढ़ाई में पड़ता है। तो भी उस सूर्यके प्रतिबिम्बका नाश होता नहीं।

काँचके महलमें कुत्ता अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर भों-भों करके मरता है। स्फटिककी भीतमें हाथी अपनी ही प्रतिच्छाया देखकर स्वयं ही भीतसे भिड़-भिड़ाकर अपना दाँत स्वयं तोड़कर दुःखी हुआ।

इस प्रकार एकके पश्चात् एक कई दृष्टान्त एक साथ एक ही बातको स्पष्ट करनेके लिए दिये गये हैं। इतना ही नहीं इसपर भी यदि किसीको समझमें न आये, तो सम्बन्धित चित्र भी दिए गए हैं। पूरी पुस्तकमें कुल २२ चित्र दिए गए हैं। चित्रके नीचे उस विषयका शीर्षक भी दिया गया है। उदाहरणके लिए, पृ० ६३ पर "षट् मतवाले" शीर्षक एक चित्र है। उसके नीचे लेखकको अपनी भाषामें निम्नांकित तीन पंक्तियाँ हैं—"स्वस्वरूपस्वानुभवगम्य सम्यक्ज्ञानमयि स्वभाववस्तुकी यथार्थ स्वरूपानुभव समज करिकै षट् जन्मांधवत ये हैं जैन, शिव, विष्णु, बौद्धादिक षट् मतवाले परस्पर विवाद विरोध करते हैं।' इसी प्रकार पृ० १२९ पर दो चित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रित हैं जो इस प्रकार हैं—"सिंघ आपकी छाया कूपमैं देष कारकै आपही अपणास्वरूप भूलि करिकै आपही कूपमैं पड़के दुष अनुभव भोग मरता है।"

इसका हिन्दी अनुवाद है—सिंह अपनी छाया कुएँमें देखकर तथा स्वयं अपना स्वरूप भूलकर कुएँमें गिरता है और दुःखी होकर मरता है।

दूसरे चित्रके नीचे लिखा है—"बानर कूंभ मैं मूठी बाँधि सो छोडता नाहीं जाणता है कै कोई मोकूं पकड लिया।"

इसका अनुवाद है—बन्दरने घड़ेमें मुट्ठी बाँधी है, उसे छोड़ता नहीं और मानता है कि मुझे किसीने पकड़ लिया।

ग्रन्थमें नयके द्वारा आत्मवस्तुका जो वर्णन किया गया है, वह "प्रवचनसार" की तत्त्वप्रदीपिका टीकाके अनुसार है। पं० बनारसीदासकृत "समयसार नाटक" के अनेक उद्धरण दोहा-कवित्त रूपमें ज्यों-के-त्यों उद्धृत लक्षित होते हैं। इनके अतिरिक्त आचार्यकल्प पं० टोडरमल कृत "मोक्षमार्गप्रकाशक" एवं "त्रिलोकसार", "द्रव्यसंग्रह", सर्वार्थसिद्धि तथा समयसार आदि ग्रन्थोंके आधारपर इस ग्रन्थकी रचना परिलक्षित होती है। अतः केवल दृष्टान्तोंका ऊहापोह या आलोचना न कर हम विषयकी गम्भीरताका विचार-कर समझनेका प्रयत्न करें, तो निःसन्देह "सम्यग्ज्ञान" पर प्रकाश डालनेवाला यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्ध होता है। सम्यग्ज्ञानकी महिमा, उसका स्वरूप और प्राप्तिका वर्णन बहुत ही सरल और सुन्दर शब्दोंमें किया गया है। अतः स्वाध्यायियोंको अवश्य पढ़ना चाहिए।

●

सप्ततिकाप्रकरण : एक अध्ययन

डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री, नीमच

श्रद्धेय पण्डित फूलचन्द्रजीका साहित्यिक क्षेत्र केवल दिगम्बर साहित्य तक ही सीमित नहीं है, वरन् श्वेताम्बरीय साहित्यका भी उनका अध्ययन गहन, मनन पूर्ण तथा तुलनात्मक है। सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० सुख-लाल संघवीकी प्रेरणासे उन्होंने छठे कर्मग्रन्थका सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद अत्यन्त सफलताके साथ सम्पन्न किया। प्रकाशक बा० दयालचन्द जौहरीने पण्डितजीके सम्बन्धमें अपना अभिप्राय निम्नलिखित शब्दोंमें व्यक्त किया है—

"पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री अपने विषयके गम्भीर अभ्यासी हैं। उन्होंने दिगम्बरीय कर्मशास्त्रोंका तो आकलन किया ही है, परन्तु इसके साथ ही श्वेताम्बरीय कर्मशास्त्रके भी पूर्ण अभ्यासी हैं। अपने इस अनुवादमें उन्होंने अपने चिरकालीन अभ्यासका पूर्ण उपयोग किया है और प्रत्येक दृष्टिसे ग्रन्थको सर्वाङ्ग सम्पूर्ण बनानेका पूर्ण प्रयत्न किया है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org